

Acharya Rajesh Benjwal

“अथातो ब्रह्मजिज्ञासा” ब्रह्मसूत्र के प्रथम पद 'अथ' का अर्थ-विमर्श: एक विस्तृत दार्शनिक विश्लेषण

18 September 2025

“अथातो ब्रह्मजिज्ञासा” ब्रह्मसूत्र के प्रथम पद 'अथ' का अर्थ-विमर्श: एक विस्तृत दार्शनिक विश्लेषण

खण्ड 1: प्रस्तावना - 'अथातो ब्रह्मजिज्ञासा' का वेदांतिक महत्व

महर्षि बादरायण द्वारा रचित ब्रह्मसूत्र, जिसे वेदांत सूत्र भी कहा जाता है, भारतीय दर्शन की प्रस्थानत्रयी (उपनिषद्, ब्रह्मसूत्र और श्रीमद्भगवद्गीता) का एक केंद्रीय स्तंभ है। इसे उपनिषदों के गूढ़ और बिखरे हुए दार्शनिक सिद्धांतों का एक सुव्यवस्थित एवं तार्किक सार माना जाता है। यह ग्रंथ एक अत्यंत अर्थगर्भित और प्रसिद्ध सूत्र से आरम्भ होता है: "

अथातो ब्रह्मजिज्ञासा

यह सूत्र केवल एक वाक्य नहीं, अपितु वेदांत दर्शन की समग्र यात्रा के लिए एक आवाहन, एक प्रस्थान और एक दिशा-निर्देश है।

इस सूत्र में तीन मौलिक पद हैं: 'अथ', जिसका सामान्य अर्थ 'अब' या 'इसके पश्चात्' है; 'अतः', जिसका अर्थ 'इसलिए' है; और 'ब्रह्मजिज्ञासा', जो 'ब्रह्म को जानने की इच्छा' का सामासिक पद है। इन तीन पदों में से, प्रथम पद 'अथ' की व्याख्या पर वेदांत के विभिन्न सम्प्रदायों, विशेष रूप से आदि शंकराचार्य, ने गहन विचार किया है। 'अथ' शब्द की व्याख्या मात्र एक शाब्दिक या व्याकरणिक अभ्यास नहीं है, बल्कि यह पूरे शास्त्र के उद्देश्य, दायरे और उसके 'अधिकारी' (योग्य साधक) की पूर्व-अपेक्षाओं को परिभाषित करती है।

'अथ' शब्द की व्याख्या यह निर्धारित करती है कि ब्रह्म-विचार का आरम्भ कौन, कब और किन परिस्थितियों में कर सकता है। यदि इसका अर्थ केवल 'आरम्भ' मान लिया जाए, तो यह शास्त्र किसी भी व्यक्ति के लिए एक सामान्य बौद्धिक अभ्यास प्रतीत हो सकता है। परन्तु, यदि इसका

अर्थ 'आनन्तर्य' अर्थात् 'किसी विशिष्ट अवस्था के पश्चात्' लिया जाए, तो यह एक योग्यता-सूचक बन जाता है। यह इस बात का संकेत देता है कि ब्रह्मसूत्र का अध्ययन आकस्मिक या प्रारंभिक नहीं है, बल्कि यह एक ऐसी आध्यात्मिक और नैतिक तैयारी के बाद आरम्भ होता है जो साधक को इस गहन ज्ञान को ग्रहण करने के योग्य बनाती है। इस प्रकार, 'अथ' शब्द एक द्वारपाल की भांति है, जो वेदांत को एक गहन मुक्ति-शास्त्र (मोक्ष-शास्त्र) के रूप में स्थापित करता है।

खण्ड 2: 'अथ' शब्द का अनेकार्थक स्वरूप और संभावित व्याख्याएँ

ब्रह्मसूत्र के प्रथम पद 'अथ' के अर्थ का निर्धारण करने से पूर्व, इसकी अनेकार्थकता पर विचार करना आवश्यक है। संस्कृत भाषा में 'अथ' शब्द का प्रयोग विभिन्न संदर्भों में अनेक अर्थों के लिए होता है। प्रसिद्ध संस्कृत कोश अमरकोश के अनुसार, 'अथ' शब्द के प्रमुख अर्थ हैं: मङ्गल, आनन्तर्य (इसके पश्चात्), आरम्भ, प्रश्न, और कात्स्न्य (सम्पूर्णता)। ब्रह्मसूत्र के इस प्रथम सूत्र के संदर्भ में, इनमें से 'मङ्गल' और 'आरम्भ' अर्थों पर प्रमुखता से विचार किया गया, जिन्हें अंततः आदि शंकराचार्य ने अनुपयुक्त मानकर खंडित कर दिया।

'मङ्गल' अर्थ का विश्लेषण

भारतीय शास्त्रीय परंपरा में किसी भी महत्वपूर्ण ग्रंथ का आरम्भ मङ्गलकारी शब्दों से करने की प्रथा है। 'अथ' और 'ॐ' शब्दों को स्वयं ब्रह्मा के कंठ से निःसृत होने के कारण अत्यंत मङ्गलसूचक माना गया है। इस आधार पर यह तर्क दिया जा सकता है कि सूत्रकार बादरायण ने ग्रंथ के निर्विघ्न समापन हेतु 'अथ' शब्द का प्रयोग मङ्गल के लिए किया है।

तथापि, आदि शंकराचार्य इस व्याख्या को 'अथ' शब्द का मुख्य वाक्यार्थ मानने से इनकार करते हैं। उनका तर्क है कि 'मङ्गल' अर्थ का सूत्र के शेष पदों ("अतः ब्रह्मजिज्ञासा") के साथ कोई तार्किक या व्याकरणिक समन्वय नहीं बैठता। "मङ्गल, इसलिए ब्रह्म को जानने की इच्छा" जैसा वाक्य-विन्यास अर्थहीन प्रतीत होता है। यहाँ शंकराचार्य एक सूक्ष्म भेद प्रस्तुत करते हैं। वे 'मङ्गल' की भावना को पूर्णतः अस्वीकार नहीं करते, बल्कि वे शब्द के प्राथमिक अर्थ और उसके अनुषंगी प्रयोजन में अंतर करते हैं। उनके अनुसार, यद्यपि 'अथ' का प्राथमिक अर्थ मङ्गल नहीं है, तथापि

शास्त्र के आरम्भ में इसका श्रवण और उच्चारण स्वयं ही मंगलकारी प्रयोजन को सिद्ध कर देता है। इस प्रकार, सूत्रकार ने 'अथ' शब्द का चयन उसके तार्किक अर्थ ('आनन्तर्य') के लिए किया, यह जानते हुए कि इस शब्द का प्रयोग स्वयं में मंगलकारी भी है। यह एक ही शब्द से दो प्रयोजनों की सिद्धि को दर्शाता है - एक तार्किक और दूसरा पारंपरिक, जो सूत्रकार की असाधारण दक्षता का परिचायक है।

'आरम्भ' अर्थ की प्रारंभिक प्रस्तुति

प्रथम दृष्ट्या, 'आरम्भ' 'अथ' का एक सहज और स्वाभाविक अर्थ प्रतीत होता है, क्योंकि यह शास्त्र का प्रथम सूत्र है और यहीं से विषय का प्रतिपादन शुरू हो रहा है। इस अर्थ के अनुसार सूत्र का तात्पर्य होगा: “ अब ब्रह्मजिज्ञासा का आरम्भ किया जाता है।” यह व्याख्या सरल है, किन्तु गहन दार्शनिक और मनोवैज्ञानिक विश्लेषण करने पर यह अनेक विसंगतियों से युक्त पाई जाती है, जिसका विस्तृत खंडन अगले खंड में प्रस्तुत है।

खण्ड 3: 'आरम्भ' अर्थ का खंडन - आदि शंकराचार्य का तार्किक एवं दार्शनिक विश्लेषण

आदि शंकराचार्य अपने ब्रह्मसूत्र भाष्य में 'अथ' शब्द के 'आरम्भ' अर्थ का दो सुदृढ़ तर्कों के आधार पर खंडन करते हैं। ये तर्क केवल व्याकरणिक नहीं, अपितु वेदांत के मनोविज्ञान और मीमांसा दर्शन के सिद्धांतों पर आधारित हैं।

3.1 इच्छा की अनारम्भ्यता: जिज्ञासा और विचार के मध्य तात्त्विक भेद

शंकराचार्य का प्रथम और सबसे मौलिक तर्क 'जिज्ञासा' शब्द के स्वरूप पर केंद्रित है। 'जिज्ञासा' का शाब्दिक विग्रह है 'ज्ञातुम् इच्छा' अर्थात् 'जानने की इच्छा'। उनका तर्क है कि इच्छा (इच्छा) एक मानसिक अवस्था है जो कर्ता के अधीन नहीं होती; यह विभिन्न आंतरिक और बाह्य कारणों से

उत्पन्न होती है। यह कोई सचेतन क्रिया नहीं है जिसका संकल्पपूर्वक 'आरम्भ' किया जा सके। कोई भी व्यक्ति यह नहीं कह सकता कि "अब मैं इच्छा करने का आरम्भ करता हूँ।" इच्छा प्रयत्नाधीन नहीं है।

इसके विपरीत, 'विचार' या 'मीमांसा' एक सचेतन, प्रयत्न-अधीन क्रिया है, जिसका आरम्भ किया जा सकता है। उदाहरण के लिए, ब्रह्म को जानने की इच्छा (जिज्ञासा) उत्पन्न होने पर, साधक उस इच्छा की पूर्ति के लिए ज्ञान-प्राप्ति हेतु प्रयत्न (अर्थात् ब्रह्म-विचार) का आरम्भ कर सकता है, किन्तु वह स्वयं उस इच्छा का आरम्भ नहीं कर सकता।

अतः, यदि 'अथ' का अर्थ 'आरम्भ' लिया जाए, तो सूत्र का अर्थ होगा "अब ब्रह्म को जानने की इच्छा का आरम्भ होता है," जो कि मनोवैज्ञानिक और दार्शनिक रूप से एक असंगत कथन है। यह तर्क वेदांत के गहन मनोविज्ञान पर आधारित है, जो ज्ञाता और उसकी मानसिक वृत्तियों के बीच के संबंध को स्पष्ट करता है। इस दृष्टिकोण में, 'इच्छा' को एक परिणाम के रूप में देखा जाता है, जिसका कारण पूर्ववर्ती संस्कार, अनुभव और योग्यताएं हैं। इसे एक स्वैच्छिक क्रिया के रूप में नहीं देखा जाता। यह भेद इस सिद्धांत को पुष्ट करता है कि आध्यात्मिक प्रगति कोई यांत्रिक प्रक्रिया नहीं, बल्कि आंतरिक परिपक्वता का एक स्वाभाविक प्रस्फुटन है। चूँकि सूत्र में 'विचार' के स्थान पर 'जिज्ञासा' शब्द का स्पष्ट प्रयोग हुआ है, इसलिए 'अथ' का 'आरम्भ' अर्थ यहाँ लागू नहीं हो सकता।

3.2 अध्याहार-दोष: 'कर्तव्य' पद के प्रयोग से 'अथ' की निरर्थकता

शंकराचार्य का दूसरा तर्क मीमांसा दर्शन के व्याख्या के नियमों पर आधारित है। "अथातो ब्रह्मजिज्ञासा" अपने आप में एक अपूर्ण वाक्य है; यह एक घोषणा है, कोई क्रिया-पद युक्त आदेश नहीं। इसका पूर्ण अर्थ समझने के लिए, इसमें एक क्रिया-पद का 'अध्याहार' करना आवश्यक है, अर्थात् एक आवश्यक शब्द को बाहर से जोड़ना। सर्वसम्मति से यहाँ 'कर्तव्य' (करना चाहिए) पद का अध्याहार किया जाता है, जिससे सूत्र का पूर्ण अर्थ बनता है: "अथ अतः ब्रह्मजिज्ञासा कर्तव्या" (अब, इसलिए, ब्रह्म के विषय में विचार करना चाहिए)। यहाँ 'जिज्ञासा' का लाक्षणिक अर्थ 'विचार' लिया जाता है।

शंकराचार्य का तर्क इसी अध्याहार पर आधारित है। वे कहते हैं कि यदि हम 'कर्तव्य' पद का अध्याहार करते हैं, तो "ब्रह्म-विचार करना चाहिए" यह वाक्य स्वयं ही एक क्रिया के आरम्भ का

बोध कराता है। किसी कार्य को 'कर्तव्य' बताने का अर्थ ही है कि उसे अब किया जाना है, उसका आरम्भ किया जाना है। इस स्थिति में, यदि 'अथ' का अर्थ भी 'आरम्भ' लिया जाए, तो यह एक पुनरुक्ति या निरर्थकता दोष को जन्म देगा। वाक्य का अर्थ हो जाएगा: "आरम्भ में, ब्रह्म-विचार का आरम्भ करना चाहिए।"

यह तर्क वेदांत पर पूर्व-मीमांसा दर्शन के गहरे प्रभाव को दर्शाता है। मीमांसा का एक मूल सिद्धांत 'अर्थवत्त्व' है, जिसके अनुसार शास्त्र के प्रत्येक शब्द का एक विशिष्ट और गैर-निरर्थक अर्थ होना चाहिए। पुनरुक्ति या निरर्थकता (वैयर्थ्य दोष) को एक गंभीर व्याख्यात्मक दोष माना जाता है। शंकराचार्य यहाँ एक कुशल मीमांसक की भांति तर्क देते हैं कि 'आरम्भ' अर्थ मानने पर सूत्रकार बादरायण जैसे सिद्ध आचार्य के सूत्र में निरर्थकता का दोष आता है। अतः, 'अथ' का कोई ऐसा अर्थ होना चाहिए जो 'कर्तव्य' पद के अर्थ में पहले से ही समाहित न हो और जो सूत्र को एक नया, आवश्यक अर्थ प्रदान करे।

खण्ड 4: 'आनन्तर्य' अर्थ की स्थापना और उसकी दार्शनिक संगति

'मंगल' और 'आरम्भ' जैसे संभावित अर्थों का खंडन करने के पश्चात्, तार्किक निष्कासन द्वारा 'आनन्तर्य' (इसके पश्चात्) ही 'अथ' शब्द का सर्वाधिक उपयुक्त और निर्दोष अर्थ सिद्ध होता है। इस व्याख्या के अनुसार, सूत्र का अर्थ है: "[कुछ विशिष्ट योग्यताओं की प्राप्ति के] पश्चात्, इसलिए, ब्रह्म को जानने की इच्छा होती है (और तदनुसार विचार कर्तव्य है)।"

यह व्याख्या तुरंत एक महत्वपूर्ण प्रश्न को जन्म देती है: "

कस्यअनन्तरम्?

" अर्थात्, "किसके पश्चात्?" इस प्रश्न का उत्तर ही वेदांत साधना का मूल आधार है। आदि शंकराचार्य के अनुसार, यह 'आनन्तर्य' 'साधन चतुष्टय' की संपत्ति के पश्चात् का सूचक है। ब्रह्मज्ञान जैसी परम वस्तु की जिज्ञासा आकस्मिक रूप से उत्पन्न नहीं हो सकती; इसके लिए अंतःकरण की शुद्धि और एक विशेष प्रकार की नैतिक एवं आध्यात्मिक तैयारी अनिवार्य है। यह तैयारी ही 'साधन चतुष्टय' है।

साधन चतुष्टय के चार घटक निम्नलिखित हैं:

1. **नित्यानित्यवस्तुविवेकः** यह नित्य (शाश्वत) और अनित्य (नश्वर) वस्तु के बीच भेद करने की तीक्ष्ण बौद्धिक क्षमता है। साधक को यह स्पष्ट बोध हो जाता है कि एकमात्र ब्रह्म ही नित्य, सत्य सत्ता है और यह सम्पूर्ण दृश्यमान जगत अनित्य और परिवर्तनशील है।
2. **इहामुत्रार्थभोगविरागः** इस विवेक के परिणामस्वरूप, साधक के मन में इस लोक (इह) और स्वर्ग आदि परलोक (अमुत्र) के समस्त भोगों और उनके फलों के प्रति अनासक्ति या वैराग्य उत्पन्न होता है। वह समझ जाता है कि सभी सांसारिक और पारलौकिक सुख अस्थायी और अंततः दुःख मिश्रित हैं।
3. **षट्सम्पत्तिः** यह छह आंतरिक, नैतिक और मनोवैज्ञानिक गुणों का समूह है, जो वैराग्य को जीवन में स्थापित करने के लिए आवश्यक है। ये हैं:
 - **शमः** मन का निग्रह या उसे बाह्य विषयों से हटाकर अंतर्मुखी करना।
 - **दमः** बाह्य इंद्रियों (आँख, कान आदि) को उनके विषयों की ओर जाने से रोकना।
 - **उपरतिः** विषयों से स्वाभाविक रूप से मन का हट जाना और स्वधर्म पालन में स्थित होना।
 - **तितिक्षाः** बिना किसी क्षोभ या चिंता के सुख-दुःख, सर्दी-गर्मी जैसे द्वंद्वों को सहन करने की क्षमता।
 - **श्रद्धाः** गुरु और वेदांत शास्त्रों के वचनों में अटूट विश्वास।
 - **समाधानः** ब्रह्म में ही चित्त को एकाग्र और स्थिर करना।
4. **मुमुक्षुत्वः** मोक्ष, अर्थात् जन्म-मृत्यु के चक्र से स्थायी मुक्ति की तीव्र और अनन्य इच्छा। जब साधक संसार की नश्वरता और दुःखरूपता को समझ लेता है, तब उसके भीतर केवल परम सत्य (ब्रह्म) को जानकर मुक्त होने की उत्कट अभिलाषा शेष रह जाती है।

यह साधन चतुष्टय केवल चार गुणों की एक सूची मात्र नहीं है, बल्कि यह एक तार्किक और मनोवैज्ञानिक प्रगति का वर्णन करता है। **विवेक** (बौद्धिक स्पष्टता) अनिवार्य रूप से **वैराग्य** (भावनात्मक अनासक्ति) को जन्म देता है। यह वैराग्य **षट्सम्पत्ति** (इच्छाशक्ति और अनुशासन) के अभ्यास को संभव बनाता है। इन तीनों की परिपक्वता ही **मुमुक्षुत्व** (एकमात्र लक्ष्य पर केंद्रित इच्छा) में परिणत होती है। यही मुमुक्षुत्व वस्तुतः वह 'ब्रह्मजिज्ञासा' है जिसका उल्लेख सूत्र में किया गया है। इस प्रकार, 'अथ' शब्द एक संपूर्ण आध्यात्मिक यात्रा के सफल समापन और एक नए, उच्चतर चरण (ब्रह्म-विचार) के आरम्भ का द्योतक है।

खण्ड 5: तुलनात्मक परिप्रेक्ष्य - अन्य वेदांत सम्प्रदायों में 'अथ' की व्याख्या

यह जानना रोचक है कि 'अथ' शब्द की व्याख्या वेदांत के अन्य प्रमुख सम्प्रदायों में भी भिन्न है, और यह भिन्नता उनके मूल दार्शनिक सिद्धांतों को दर्शाती है।

- **विशिष्टाद्वैत (रामानुजाचार्य):** आचार्य रामानुज भी 'अथ' का अर्थ 'आनन्तर्य' ही स्वीकार करते हैं। परन्तु, उनके अनुसार यह 'आनन्तर्य' शंकराचार्य द्वारा प्रतिपादित साधन चतुष्टय के पश्चात् नहीं, बल्कि जैमिनि कृत पूर्व-मीमांसा शास्त्र (कर्म-मीमांसा) के अध्ययन के अनन्तर है। उनका तर्क यह है कि जब साधक कर्म-मीमांसा का अध्ययन करके यह जान लेता है कि यज्ञ आदि वैदिक कर्मों के फल अनित्य और सीमित हैं, तब उसके मन में स्वाभाविक रूप से उस परम तत्त्व (ब्रह्म) को जानने की इच्छा उत्पन्न होती है, जिससे नित्य और असीम फल (मोक्ष) की प्राप्ति हो सके। यह व्याख्या ज्ञान और कर्म के समन्वय पर बल देती है, जो विशिष्टाद्वैत का एक प्रमुख सिद्धांत है।
- **द्वैत (मध्वाचार्य):** आचार्य मध्व भी 'आनन्तर्य' अर्थ को स्वीकार करते हैं, किन्तु वे इसे भक्ति और ईश्वर की कृपा के परिप्रेक्ष्य में देखते हैं। उनके अनुसार, ब्रह्मजिज्ञासा का अधिकार वेदाध्ययन, आत्म-संयम, वैराग्य और इन सबसे बढ़कर, भगवान विष्णु की अहैतुकी कृपा (प्रसाद) के पश्चात् ही प्राप्त होता है। उनके लिए, केवल मानवीय प्रयास पर्याप्त नहीं है; ब्रह्म को जानने की इच्छा स्वयं ईश्वर की कृपा का फल है। यह व्याख्या उनके द्वैतवादी ढांचे के अनुरूप है, जहाँ जीव सदैव ईश्वर पर आश्रित है और मोक्ष केवल भक्ति और ईश्वरीय अनुग्रह से ही संभव है।

इस प्रकार, 'अथ' के पूर्ववृत्त की व्याख्या प्रत्येक आचार्य के संपूर्ण दार्शनिक तंत्र का एक सूक्ष्म प्रतिबिंब बन जाती है। शंकराचार्य का साधन चतुष्टय पर बल उनके ज्ञान-केंद्रित मार्ग को, रामानुजाचार्य का कर्म-मीमांसा पर बल उनके कर्म-ज्ञान-भक्ति समन्वित मार्ग को, और मध्वाचार्य का ईश्वर-कृपा पर बल उनके भक्ति-केंद्रित मार्ग को दर्शाता है।

विशेषता	आदि शंकराचार्य (अद्वैत)	रामानुजाचार्य (विशिष्टाद्वैत)	मध्वाचार्य (द्वैत)
अथ' का मुख्य अर्थ	आनन्तर्य (Succession)	आनन्तर्य (Succession)	आनन्तर्य / अधिकार (Eligibility)
किसके अनन्तर ?	साधन चतुष्टय की प्राप्ति के पश्चात्	पूर्व-मीमांसा (कर्मकांड) के अध्ययन के पश्चात्	अध्ययन, वैराग्य और मुख्यतः भगवान विष्णु की कृपा के पश्चात्
प्राथमिक मार्ग	ज्ञान मार्ग	कर्म-ज्ञान-भक्ति का समन्वित मार्ग	भक्ति मार्ग
दार्शनिक निहितार्थ	ब्रह्मज्ञान के लिए नैतिक-मनोवैज्ञानिक तैयारी अनिवार्य है।	धर्म का अनुष्ठान ज्ञान की इच्छा को जन्म देता है।	ब्रह्मजिज्ञासा स्वयं ईश्वर का एक उपहार है।

खण्ड 6: निष्कर्ष - अर्थ-निर्धारण का दार्शनिक निहितार्थ

ब्रह्मसूत्र के प्रथम पद 'अथ' के 'आरम्भ' अर्थ का खंडन और 'आनन्तर्य' अर्थ की स्थापना केवल एक पांडित्यपूर्ण अकादमिक बहस नहीं है, बल्कि यह वेदांत साधना के संपूर्ण स्वरूप और उसकी आत्मा को परिभाषित करती है। शंकराचार्य द्वारा प्रस्तुत तर्क—कि इच्छा का आरम्भ नहीं किया जा सकता और 'कर्तव्य' पद के अध्याहार से 'अथ' का 'आरम्भ' अर्थ निरर्थक हो जाता है—अकाट्य रूप से सिद्ध करते हैं कि सूत्रकार का अभिप्राय एक विशिष्ट क्रम से था।

'आनन्तर्य' अर्थ की स्वीकृति ब्रह्मज्ञान की खोज को एक सुदृढ़ नैतिक और आध्यात्मिक आधार प्रदान करती है। यह स्थापित करता है कि ब्रह्म-विचार कोई बौद्धिक मनोरंजन या दार्शनिक अटकलबाजी नहीं है। यह एक गंभीर और गहन आध्यात्मिक अनुशासन है जो केवल उन साधकों के लिए है जिन्होंने साधन चतुष्टय के अभ्यास द्वारा अपने अंतःकरण को शुद्ध और परिष्कृत कर लिया है। यह इस सत्य को रेखांकित करता है कि परम ज्ञान की प्राप्ति के लिए केवल बौद्धिक

तीक्ष्णता पर्याप्त नहीं है; इसके लिए नैतिक शुचिता, भावनात्मक स्थिरता और एकनिष्ठ लक्ष्य का होना अनिवार्य है।

अंततः, 'अथ' शब्द अपनी सही व्याख्या में, वेदांत के भव्य प्रासाद के प्रवेश द्वार पर उत्कीर्ण एक शिलालेख की भांति है, जो यह घोषणा करता है: "केवल योग्य ही प्रवेश करें।" यह एक शब्द संपूर्ण शास्त्र को एक सामान्य ग्रंथ से उठाकर एक पवित्र और जीवन-रूपांतरणकारी आध्यात्मिक यात्रा के रूप में प्रतिष्ठित कर देता है, जिसका लक्ष्य केवल जानना नहीं, बल्कि 'होना' है।

FAQ

1. ब्रह्मसूत्र का महत्व क्या है और यह किस उद्देश्य से आरम्भ होता है?

महर्षि बादरायण द्वारा रचित ब्रह्मसूत्र (या वेदांत सूत्र) भारतीय दर्शन की प्रस्थानत्रयी (उपनिषद्, ब्रह्मसूत्र और श्रीमद्भगवद्गीता) का एक केंद्रीय स्तंभ है। इसका मुख्य उद्देश्य उपनिषदों के गूढ़ और बिखरे हुए दार्शनिक सिद्धांतों का एक सुव्यवस्थित एवं तार्किक सार प्रस्तुत करना है। यह ग्रंथ "अथातो ब्रह्म जिज्ञासा" नामक सूत्र से आरम्भ होता है, जो वेदांत दर्शन की समग्र यात्रा के लिए एक आवाहन, एक प्रस्थान और एक दिशा-निर्देश है। यह सूत्र ब्रह्म-विचार के लिए योग्य साधक की पूर्व-अपेक्षाओं को परिभाषित करता है और शास्त्र के उद्देश्य एवं दायरे को निर्धारित करता है।

2. "अथातो ब्रह्म जिज्ञासा" सूत्र में 'अथ' शब्द का क्या अर्थ है और इसकी व्याख्या क्यों महत्वपूर्ण है?

"अथातो ब्रह्म जिज्ञासा" सूत्र में 'अथ' का शाब्दिक अर्थ 'अब' या 'इसके पश्चात्' है। संस्कृत में 'अथ' शब्द के कई अर्थ हैं, जैसे मंगल, आनन्तर्य (इसके पश्चात्), आरम्भ, प्रश्न, और कात्स्न्य (सम्पूर्णता)। 'अथ' शब्द की व्याख्या अत्यंत महत्वपूर्ण है क्योंकि यह निर्धारित करती है कि ब्रह्म-विचार का आरम्भ कौन, कब और किन परिस्थितियों में कर सकता है। यदि इसका अर्थ केवल 'आरम्भ' लिया जाए, तो यह शास्त्र किसी भी व्यक्ति के लिए सामान्य बौद्धिक अभ्यास हो सकता है। परंतु, यदि इसका अर्थ 'आनन्तर्य' (किसी विशिष्ट अवस्था के पश्चात्) लिया जाए, तो यह एक योग्यता-सूचक बन जाता है, जो यह संकेत देता है कि ब्रह्मसूत्र का अध्ययन एक विशेष आध्यात्मिक और नैतिक तैयारी के बाद ही आरम्भ होता है।

3. आदि शंकराचार्य 'अथ' शब्द के 'मंगल' और 'आरम्भ' अर्थों का खंडन क्यों करते हैं?

आदि शंकराचार्य 'अथ' के 'मंगल' अर्थ को इसका मुख्य वाक्यार्थ नहीं मानते। उनका तर्क है कि 'मंगल' अर्थ का सूत्र के शेष पदों ("अतः ब्रह्मजिज्ञासा") के साथ कोई तार्किक या व्याकरणिक समन्वय नहीं बैठता। हालांकि, वे यह स्वीकार करते हैं कि शास्त्र के आरम्भ में 'अथ' शब्द का श्रवण और उच्चारण स्वयं ही मंगलकारी होता है, लेकिन यह शब्द का प्राथमिक अर्थ नहीं है। 'आरम्भ' अर्थ का खंडन वे दो मुख्य तर्कों पर करते हैं:

1. **इच्छा की अनारम्भ्यता:** 'जिज्ञासा' का अर्थ 'जानने की इच्छा' है। शंकराचार्य के अनुसार, इच्छा एक मानसिक अवस्था है जो कर्ता के अधीन नहीं होती और इसका संकल्पपूर्वक 'आरम्भ' नहीं किया जा सकता। कोई व्यक्ति इच्छा को आरम्भ करने का निर्णय नहीं ले सकता; यह स्वतः उत्पन्न होती है। ब्रह्म को जानने की इच्छा उत्पन्न होने पर व्यक्ति उसके लिए विचार (प्रयत्न) का आरम्भ कर सकता है, परंतु इच्छा का नहीं।
2. **अध्याहार-दोष:** सूत्र का पूर्ण अर्थ समझने के लिए इसमें 'कर्तव्या' (करना चाहिए) क्रिया-पद का अध्याहार (बाहर से जोड़ना) आवश्यक है, जिससे सूत्र का अर्थ बनता है "अथ अतः ब्रह्मजिज्ञासा कर्तव्या" (अब, इसलिए, ब्रह्म के विषय में विचार करना चाहिए)। 'कर्तव्य' पद स्वयं ही क्रिया के आरम्भ का बोध कराता है। यदि 'अथ' का अर्थ भी 'आरम्भ' लिया जाए, तो यह एक पुनरुक्ति या निरर्थकता दोष (वैयर्थ्य दोष) को जन्म देगा, जो शास्त्र के प्रत्येक शब्द के विशिष्ट अर्थ के सिद्धांत के विरुद्ध है।

4. आदि शंकराचार्य के अनुसार 'अथ' शब्द का सही अर्थ क्या है और यह किस 'आनन्तर्य' को इंगित करता है?

आदि शंकराचार्य के अनुसार, 'अथ' शब्द का सर्वाधिक उपयुक्त और निर्दोष अर्थ 'आनन्तर्य' (इसके पश्चात्) है। इस व्याख्या के अनुसार, सूत्र का अर्थ है: "[कुछ विशिष्ट योग्यताओं की प्राप्ति के] पश्चात्, इसलिए, ब्रह्म को जानने की इच्छा होती है (और तदनुसार विचार कर्तव्य है)।" यह 'आनन्तर्य' 'साधन चतुष्टय' की संपत्ति के पश्चात् का सूचक है। ब्रह्मज्ञान जैसी परम वस्तु की जिज्ञासा आकस्मिक रूप से उत्पन्न नहीं हो सकती, इसके लिए अंतःकरण की शुद्धि और एक विशेष प्रकार की नैतिक एवं आध्यात्मिक तैयारी अनिवार्य है।

5. साधन चतुष्टय क्या है और यह ब्रह्मजिज्ञासा के लिए कैसे महत्वपूर्ण है?

साधन चतुष्टय ब्रह्मजिज्ञासा के लिए आवश्यक चार नैतिक और आध्यात्मिक गुणों का समूह है, जिनकी प्राप्ति के बाद ही ब्रह्म-विचार की योग्यता आती है। ये हैं:

1. **नित्यानित्यवस्तुविवेक:** नित्य (शाश्वत ब्रह्म) और अनित्य (नश्वर जगत्) के बीच भेद करने की क्षमता।

2. **इहामुत्रार्थभोगविरागः**: इस लोक और परलोक के समस्त भोगों और उनके फलों के प्रति अनासक्ति या वैराग्य।

3. **षट्सम्पत्तिः**: छह आंतरिक गुणों का समूहः

- **शमः**: मन का निग्रह।
- **दमः**: बाह्य इंद्रियों का निग्रह।
- **उपरतिः**: विषयों से स्वाभाविक विरक्ति और स्वधर्म में स्थिति।
- **तितिक्षा**: सुख-दुःख, सर्दी-गर्मी जैसे द्वंद्वों को सहन करने की क्षमता।
- **श्रद्धा**: गुरु और वेदांत शास्त्रों में अटूट विश्वास।
- **समाधानः**: ब्रह्म में चित्त की एकाग्रता और स्थिरता।

1. **मुमुक्षुत्वः**: जन्म-मृत्यु के चक्र से स्थायी मुक्ति (मोक्ष) की तीव्र और अनन्य इच्छा।

यह साधन चतुष्टय एक तार्किक और मनोवैज्ञानिक प्रगति का वर्णन करता है, जो विवेक से शुरू होकर वैराग्य, नैतिक अनुशासन और अंततः मोक्ष की उत्कट इच्छा में परिणत होता है, जिससे साधक ब्रह्म-विचार के लिए योग्य बनता है।

6. वेदांत के विभिन्न सम्प्रदायों में 'अथ' की व्याख्या किस प्रकार भिन्न है?

'अथ' शब्द की व्याख्या वेदांत के अन्य प्रमुख सम्प्रदायों में उनके मूल दार्शनिक सिद्धांतों के अनुसार भिन्न है:

- **विशिष्टाद्वैत (रामानुजाचार्य)**: रामानुज भी 'आनन्तर्य' स्वीकार करते हैं, लेकिन उनके अनुसार यह जैमिनि कृत पूर्व-मीमांसा शास्त्र (कर्म-मीमांसा) के अध्ययन के अनन्तर है। उनका तर्क है कि वैदिक कर्मों के फल अनित्य और सीमित होते हैं, यह जानने के बाद साधक में नित्य फल (मोक्ष) देने वाले ब्रह्म को जानने की इच्छा उत्पन्न होती है। यह व्याख्या ज्ञान और कर्म के समन्वय पर बल देती है।
- **द्वैत (मध्वाचार्य)**: मध्व भी 'आनन्तर्य' अर्थ स्वीकार करते हैं, परंतु वे इसे भक्ति और ईश्वर की कृपा के परिप्रेक्ष्य में देखते हैं। उनके अनुसार, ब्रह्मजिज्ञासा का अधिकार वेदाध्ययन, आत्म-संयम, वैराग्य और सबसे बढ़कर, भगवान विष्णु की अहैतुकी कृपा के पश्चात् ही प्राप्त होता है। यह उनके द्वैतवादी ढांचे के अनुरूप है, जहाँ मोक्ष केवल भक्ति और ईश्वरीय अनुग्रह से ही संभव है।

7. ब्रह्म क्या है और इसकी प्रसिद्धि किस प्रकार होती है?

सूत्रों के अनुसार, ब्रह्म शब्द की व्युत्पत्ति 'बृहि वृद्धौ' (बृह धातु जिसका अर्थ बढ़ना या महान होना) से हुई है, जिसका तात्पर्य निरवधिक महत्व से है। यह निरवधिक महत्व दोषरहित (अन्तवत्त्व आदि दोषों से मुक्त) और गुणों से संपन्न (सर्वज्ञत्व आदि गुणों से युक्त) होता है। इस प्रकार, ब्रह्म को

देश, काल और वस्तुतः परिच्छेद से रहित (नित्य), अविद्यादि दोषों से शून्य (शुद्ध), जाड्य रहित (बुद्ध), और बन्धरहित (मुक्त) के रूप में प्रसिद्ध माना गया है। यह सकल दोष शून्य निर्गुण ब्रह्म के रूप में भी प्रसिद्ध है और सर्वज्ञत्व आदि गुणों से युक्त सगुण ब्रह्म के रूप में भी।

ब्रह्म की प्रसिद्धि आत्मा के माध्यम से भी होती है। हर व्यक्ति 'अहमस्मि' (मैं हूँ) के रूप में अपने अस्तित्व को जानता है, जो सच्चिदात्मन की प्रसिद्धि है। 'अयमात्मा ब्रह्म' जैसी श्रुतियाँ आत्मा और ब्रह्म की अभिन्नता बताती हैं, जिससे आत्मा की प्रसिद्धि के माध्यम से ब्रह्म की भी प्रसिद्धि होती है।

8. ब्रह्मजिज्ञासा के विषय में विवाद (विप्रतिपत्ति) क्यों होता है और इसका क्या महत्व है?

ब्रह्म की सामान्यतः (सत्त्व-चैतन्य के रूप में) प्रसिद्धि होने पर भी, उसके विशेष स्वरूप के विषय में विभिन्न दार्शनिकों में विवाद (विप्रतिपत्ति) होता है। यह विवाद इस कारण है कि केवल 'अहमस्मि' जैसी सामान्य प्रतीति ब्रह्म के पूर्ण, आनन्दमय स्वरूप का ज्ञान नहीं कराती। यदि पूर्ण ब्रह्मत्व स्वतः ही ज्ञात होता, तो कोई विवाद नहीं होता।

विभिन्न मतों में आत्मा (और ब्रह्म) के स्वरूप को लेकर अनेक विप्रतिपत्तियाँ हैं:

- कुछ इसे केवल देह मानते हैं।
- कुछ इंद्रिय, मन या बुद्धि को आत्मा मानते हैं।
- तार्किक आत्मा को कर्ता, भोक्ता और प्रमाता मानते हैं।
- सांख्य आत्मा को भोक्ता और अकर्ता मानते हैं।
- योगी ईश्वर को आत्मा से भिन्न मानते हैं।
- वेदांती मानते हैं कि भोक्ता, अकर्ता जीव का आत्मा (स्वरूप) ही ईश्वर है।

ये विप्रतिपत्तियाँ दर्शाती हैं कि ब्रह्म के विशेष स्वरूप का ज्ञान अज्ञात है, अतः उसके विषय में विचार आवश्यक है। इन विवादों के होते हुए भी ब्रह्मविचार इसलिए कर्तव्य है क्योंकि केवल ब्रह्मात्मैक्य के विज्ञान से ही मुक्ति संभव है। मतांतरों पर श्रद्धा रखने से मोक्ष की सिद्धि नहीं होती, बल्कि आत्मा को अन्यथा जानने से संसार चक्र में फँसने का भय रहता है। इसलिए, सभी मुमुक्षुओं के लिए निःश्रेयस फल (मोक्ष) की प्राप्ति हेतु वेदान्त विचार करना कर्तव्य है।